बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 58

खाते में खाद सब्सिडी

उर्वरक सब्सिडी की राशि सीधे किसानों के खाते में डालने के लिए एक व्यवस्था बनाने के इरादे से वित्त मंत्रालय और नीति आयोग की साझा पहल एक स्वागत-योग्य कदम है जिससे कई उद्देश्य हासिल किए जा सकते हैं। लेकिन दूसरी तरह की सब्सिडी के प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (डीबीटी) की तुलना में यह अधिक जटिल है। दरअसल उर्वरक की किस्में हर किसान और फसल के लिए एक जैसी नहीं होती हैं और इनके बारे में अलग से कोई आंकड़ा भी उपलब्ध नहीं है, लिहाजा हरेक किसान को दी जाने वाली सब्सिडी तय कर पाना मुश्किल है। ऐसी मीडिया रिपोर्ट आई हैं कि वित्त मंत्रालय शायद पीएम-किसान आय समर्थन योजना के लिए तैयार आंकड़ों का इस्तेमाल करने की सोच रहा है। अगर वाकई में ऐसा है तो फिर उसे दोबारा सोचना चाहिए। उर्वरक डीबीटी के लिए ये आंकड़े पर्याप्त नहीं हैं क्योंकि पीएम-किसान योजना में केवल छोटे एवं सीमांत भू-स्वामियों को शामिल किया गया है और बंटाई एवं पट्टे पर खेती करने वालों को उसमें जगह नहीं मिली है। सबसे बड़ी पहेली यह है कि इसमें खेती नहीं करने वाले अनुपस्थित भूस्वामियों को भी लाभ देने का प्रावधान है।

हालांकि मंत्रालय के पास नई व्यवस्था का खाका तैयार करने के लिए कुछ वक्त है। असल में, आम चुनाव के बाद बनने वाली नई सरकार ही इस नई व्यवस्था को स्वीकृति दे सकती है और उसे लागू कर सकती है। अहम मुद्दा यह है कि भूमि-स्वामित्व से इतर वास्तव में खेती करने वाले किसानों की पहचान की जाए और उर्वरक क्षेत्र के सभी हितधारकों को स्वीकार्य एक गैर-विभेदकारी डीबीटी प्रणाली बनाई जाए। वर्तमान समय में किसानों को उर्वरक घटी हुई दरों पर बेचा जाता है और उनके वास्तविक मूल्य पर दी गई सब्सिडी की राशि उर्वरक कंपनियों के खाते में जमा कर दी जाती है। इसकी शिनाख्त के लिए खाद के सभी खुदरा बिक्री केंद्रों पर खास उपकरण लगाए हुए हैं। लाभार्थी किसानों की पहचान सुनिश्चित करने के लिए आधार कार्ड का इस्तेमाल किया जाता है। हालांकि यह व्यवस्था राज्य प्रशासन और अन्य मध्यवर्तियों को बाइपास भी करती है। भले ही इसे डीबीटी की तरह मान्यता दी जाती है लेकिन उसके साथ कई अड़चनें भी जुड़ी हुई हैं। उर्वरक उद्योग को सब्सिडी भुगतान में होने वाली देरी और सब्सिडी वाली खाद को फिर से रसायन उद्योग और तस्करी के जरिये पड़ोसी देशों में भेजने जैसी समस्याएं भी रही हैं।

सीधे किसानों के बैंक खातों में उर्वरक सब्सिडी जमा करना कई मायनों में बेहतर विकल्प है। सब्सिडी वाली खाद के गैर-कृषि कार्यों में इस्तेमाल रोकने के अलावा डीबीटी यूरिया का अतिशय इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति पर भी रोक लगाएगा जिससे पौधों को अधिक पोषक-तत्त्व देने वाले संतुलित उर्वरक संरचना को प्रोत्साहन मिलेगा। अधिक यूरिया से मिट्टी की उर्वरता कम होने के अलावा पर्यावरण एवं भूजल दूषित भी होता है। इसके अलावा बाजार दर पर उर्वरकों की बिक्री होने से इस उद्योग में प्रतिस्पर्द्धा को भी बढ़ावा मिलेगा। इससे उर्वरक उत्पादक किसानों की जरूरतों को पूरा करने के लिए अपनी क्षमता बढ़ाने, लागत में कटौती और नवाचारी उत्पाद लाने के लिए प्रोत्साहित होंगे। हालांकि सब्सिडी हटाने का उलटा असर यह हो सकता है कि नकदी की कमी से परेशान छोटे एवं सीमांत किसानों की पहुंच से खाद दूर हो जाए। एक और समस्या यह है कि उर्वरक सब्सिडी के मद में भेजी गई राशि का इस्तेमाल किसान कहीं और कर ले।

इस तरह उर्वरक डीबीटी की नई व्यवस्था सक्षम, संतुलित एवं फसलों की जरूरत पर आधारित उपयोग को बढ़ावा देने पर ध्यान देने वाली हो और उसमें भू-स्वामियों के अलावा पट्टे एवं बंटाई पर खेती करने वाले सभी तरह के किसानों के हितों को ध्यान में रखे। ऐसा नहीं होने पर उर्वरक डीबीटी का असली मकसद ही धराशायी हो जाएगा।

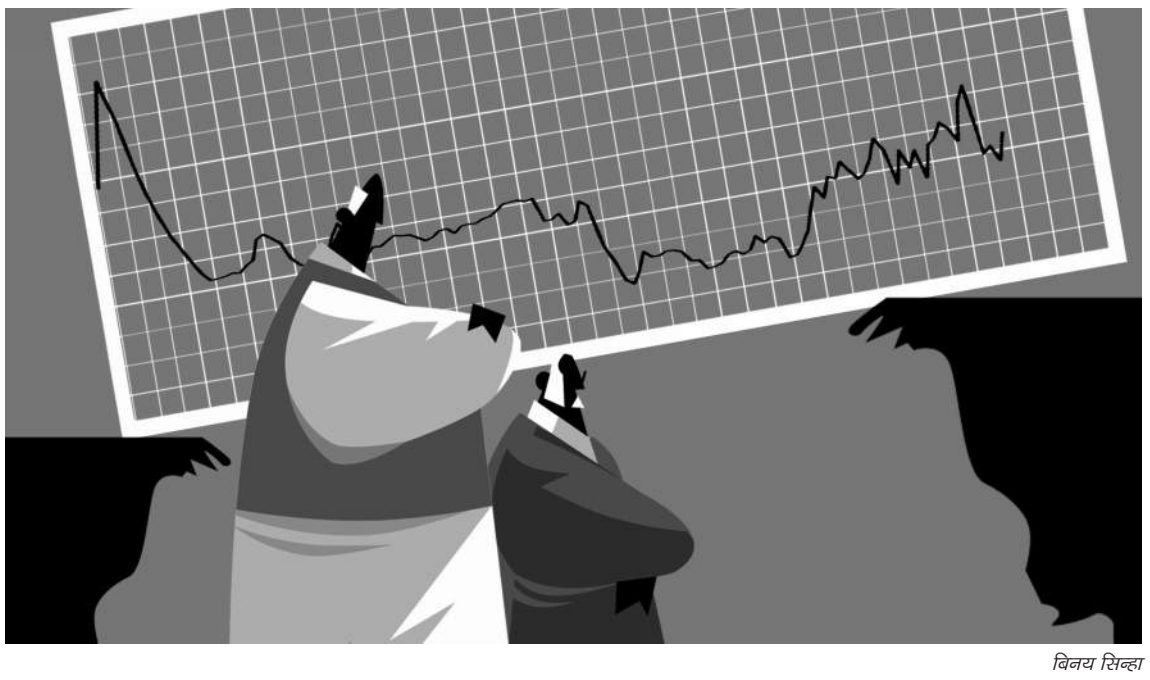

बिनय सिन्हा

नई सरकार की वृहद आर्थिक प्राथमिकताएं

देश में जो भी नई सरकार बनेगी, उसके समक्ष कुछ ऐसी अहम चुनौतियां होंगी जो प्रमुख राजनीतिक दलों के चुनाव घोषणापत्रों में नजर नहीं आतीं। विस्तार से बता रहे हैं **शंकर आचार्य**

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) सरकार का कार्यकाल पूरा होने को है और चुनाव की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी है। नई सरकार की वृहद आर्थिक प्राथमिकताएं क्या होनी चाहिए, इस बारे में बात करने का यह सही वक्त है, फिर चाहे सरकार राजग की हो (जिसकी संभावना ज्यादा है) या कांग्रेस की। बीते पांच वर्ष का आर्थिक रिकॉर्ड मिलाजुला रहा है और आने वाली सरकार के समक्ष कई चुनौतियां होंगी। खासतौर पर कमजोर वैश्विक आर्थिक माहौल को देखते हुए।

निम्नलिखित बातों पर विचार कीजिए: वर्ष 2011-12 के राष्ट्रीय आय के आधिकारिक आंकड़े (जिनकी पेशेवर क्षमता पर सवाल उठे) बताते हैं कि बीते दो वर्ष के दौरान वृद्धि में धीमापन आया है। जीडीपी वृद्धि दर 2016-17 में 8.2 फीसदी और 2018-19 में 7 फीसदी रह गई। तिमाही वृद्धि दर में भी कमी आई और 2017-18 की चौथी तिमाही के 8 फीसदी से घटकर 2018-19 की चौथी तिमाही में 6.5 फीसदी रह गई। यह मंदी उच्च तीव्रता वाली सूचनाओं मसलन औद्योगिक उत्पादन सूचकांक, कारोबारी आंकड़ों, कारोबारी आय के नतीजे, क्रय प्रबंधक सूचकांक, प्रमुख क्षेत्रों के संकेतकों आदि में भी नजर आई। मौजूदा नीतियों और रुझानों के मुताबिक 2019-20 में जीडीपी वृद्धि दर 6 से 6.5 फीसदी हो सकती है। इसकी प्रमुख वजह इस प्रकार हैं: वैश्विक वृद्धि और व्यापार में धीमापन, देश के निर्यात में ठहराव, केंद्र और राज्यों का संयुक्त राजकोषीय घाटा 7 फीसदी के आसपास होने से निजी निवेश में कमी, सरकारी उधारी की 8.5 फीसदी की दर, ऊंची ब्याज दर, फंसे कर्ज का बैलेंस शीट पर दबाव तथा कारोबारी भावना का ह्रास आदि प्रमुख हैं। इसके अलावा वित्तीय क्षेत्र में भी तंगी है तथा कृषि, बिजली, भूमि और श्रम बाजारों में सुधारों का इंतजार है।

सकारात्मक पहलू की बात करें तो खुदरा महंगाई का आंकड़ा 3 फीसदी से नीचे आया और वर्ष 2018-19 का इसका औसत 3 फीसदी के आसपास रहा। हालांकि मूल मुद्रास्फीति की दर 5 फीसदी से ऊपर बनी रही। लेकिन इसे कमजोर ईंधन कीमतों और कृषि जिंस कीमतों में गिरावट का लाभ मिला। दूसरी ओर, बाह्य वित्त भी दबाव में है और भुगतान संतुलन में चालू खाते का घाटा अप्रैल-दिसंबर 2018 के बीच औसतन 2.6 फीसदी के असहज करने वाले स्तर पर रहा। यह बात खासतौर पर चिंतित करने वाली है क्योंकि विनिर्मित वस्तुओं का निर्यात 2011-12 से ही 30,000 करोड़ डॉलर सालाना पर ठहरा हुआ है। जीडीपी के साथ इसका अनुपात 17 फीसदी से घटकर 2018-19 में 12 फीसदी पर आ गया। इसकी वजह इस प्रकार हैं: अधिमूल्यित विनिमय दर, चीन से सस्ते विनिर्माण के स्थानांतरण से लाभ नहीं उठा पाना (जबकि वियतनाम और बांग्लादेश ने इसका फायदा उठाया) और वैश्विक मूल्य शृंखला का हिस्सा न बन पाना, बीते दो वर्ष में उच्च सीमा शुल्क लागू करना, नोटबंदी और जीएसटी के नकारात्मक प्रभाव (खासकर छोटे निर्यातकों पर) और निर्यात क्षेत्र में कारोबारी सुगमता की कमी। सबसे बढ़कर देश में रोजगार की स्थिति काफी गंभीर हो गई है क्योंकि शिक्षा, कौशल और स्वास्थ्य के क्षेत्र में लंबे समय से कमजोरी व्याप्त है तथा श्रम कानून और नियमन भारी पैमाने पर रोजगार विरोधी साबित हुए हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय ने 2017-18 में जो श्रम शक्ति सर्वेक्षण कराया था, उसके आंकड़े जारी नहीं किए गए हैं लेकिन उसके आंकड़े चौंकाने वाले हैं। इनके मुताबिक बेरोजगारी दर 6 फीसदी, 15 से 29 वर्ष के युवाओं में बेरोजगारी खतरनाक रूप से ऊंची है। शहरी महिलाओं में यह दर 27 फीसदी और शहरी पुरुषों में 19 फीसदी है। श्रम भागीदारी दर कुल मिलाकर 50 फीसदी से कम है।

लब्बोलुआब यह कि नई सरकार को धीमी आर्थिक वृद्धि, कमजोर निजी निवेश, कमजोर निर्यात, बाह्य असंतुलन, तंगहाल वित्तीय तंत्र, बढ़ते राजकोषीय दबाव तथा भारी बेरोजगारी की समस्याओं से निपटना होगा।

इस परिदृश्य में किसी भी सरकार के लिए वृहद आर्थिक नीति के लक्ष्यों पर सहमत होना मुश्किल न होगा। इसके लिए जीडीपी और रोजगार में तेज वृद्धि की आवश्यकता होगी। उपभोक्ता मुद्रास्फीति और बाह्य घाटे को कम रखना होगा और वित्तीय तंत्र को मजबूत रखना होगा। ऐसी नीतियां तैयार करना मुश्किल काम है जिनमें निरंतरता भी हो और जो राजनीतिक रूप से स्वीकार्य भी हों। मेरे मुताबिक वृहद आर्थिक नीति में इन क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए:

निर्यात वृद्धि की गति तेज करना: रुपये के मौजूदा अधिमूल्यन में कमी, जीएसटी तंत्र और उसकी प्रक्रियाओं में सुधार करना, सीमाशुल्क में बढ़ोतरी को स्थिर करना और फिर उसे कम करना (यह निर्यात पर कर की तरह काम करता है), क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौतों को सफलतापूर्वक अंजाम देना, ताकि तेज विकास वाले आसियान देशों के साथ व्यापार के अवसरों को सुरक्षित किया जा सके। तेज निर्यात वृद्धि से जीडीपी भी दुरुस्त होगा और रोजगार भी बेहतर होगा क्योंकि 35 से 40 फीसदी निर्यात छोटे उत्पादकों से आता है। इसके अलावा हमारा व्यापार और चालू खाता घाटा कम होगा तथा कारोबारी साझेदारों के साथ हमारे रिश्ते मजबूत होंगे।

केंद्र सरकार के राजकोषीय और राजस्व घाटे को कम करना होगा। इसके लिए व्यय और राजस्व मोर्चे पर कुछ कड़े फैसले करने होंगे। ऐसा करने से तीन लाभ होंगे। एक तो निजी निवेश के लिए मध्यम और लंबी अवधि के लिए धन की ब्याज दरों में कमी आएगी। दूसरा, उच्च सार्वजनिक बचत होगी और व्यापार घाटे को समायोजित करने में मदद मिलेगी तथा जीडीपी के 70 फीसदी के बराबर के हमारे सरकारी कर्ज में धीरे-धीरे कमी आएगी।

बीते पांच वर्ष के प्रमुख आर्थिक सुधारों- उदाहरण के लिए जीएसटी और आईबीसी- को आधार बनाकर आगे काम करना। जीएसटी दर के ढांचे को सहज बनाने की आवश्यकता है। शायद 15-16 फीसदी की मॉडल दर के साथ यह काम किया जा सकता है। इसके साथ 8 से 10 फीसदी की रियायती दर और व्यसन वाली सामग्री तथा सीमित विलासिता वस्तुओं पर 25 से 30 फीसदी की दर लगाई जा सकती है। निर्यात पर प्रभावी दर शून्य किए जाने की आवश्यकता है। सूचना प्रौद्योगिकी व्यवस्था, पंजीयन और रिपोर्टिंग की आवश्यकता और अनुपालन प्रक्रिया की समय-समय पर समीक्षा और सुधार करने होंगे। आईबीसी की व्यवस्था पर प्रवर्तक और अन्य निहित स्वार्थ वाली कंपनियां निरंतर गंभीर प्रहार कर रही हैं। इस सुधार को मजबूत बनाने के लिए लगातार समीक्षा और सुधार की आवश्यकता है।

अगर हम रोजगार को बढ़ावा देने वाले विनिर्माण क्षेत्र में सुधार को लेकर गंभीर हैं तो हमें श्रम और भूमि क्षेत्र में बड़े सुधारों को अंजाम देना होगा। हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि हम वियतनाम और बांग्लादेश के साथ मुकाबला करके, चीन से बाहर जा रहे श्रम आधारित उद्योगों को ज्यादा से ज्यादा तादाद में अपने यहां आकर्षित कर सकें।

ये तमाम प्राथमिकताएं चुनाव घोषणापत्रों में भले ही नजर न आएं लेकिन देश के विकास और रोजगार वृद्धि के लिए ये काफी अहम हैं। सतत आर्थिक और सामाजिक विकास का लक्ष्य इनके बिना हासिल करना मुश्किल होगा।

पीएसयू की रणनीतिक बिक्री में 'रणनीति' का है अभाव

दिल्ली डायरी

ए के भट्टाचार्य

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) में सरकारी हिस्सेदारी का विनिवेश एक ऐसा मामला है जहां मोदी सरकार ने पिछली सरकार की तुलना में बेहतर प्रदर्शन किया है। मनमोहन सिंह सरकार के दूसरे कार्यकाल में विनिवेश से हुई कुल प्राप्तियां 99,367 करोड़ रुपये रही थीं जबकि मोदी सरकार ने अप्रैल 2014-मार्च 2019 के दौरान विनिवेश से करीब 2.9 लाख करोड़ रुपये जुटाए हैं।

दोनों सरकारों के विनिवेश लक्ष्य के मामले में भी मोदी सरकार का प्रदर्शन बेहतर रहा है। मोदी सरकार अपने विनिवेश लक्ष्य का करीब 89 फीसदी राजस्व जुटाने में सफल रही है। मनमोहन सरकार ने अप्रैल 2009-मार्च 2014 के दौरान पांच में से चार बजट में विनिवेश लक्ष्य घोषित किए थे। वह कुल लक्ष्य का 66 फीसदी ही हासिल कर पाई थी।

मोदी सरकार का विनिवेश के मोर्चे पर प्रदर्शन मनमोहन सरकार की तुलना में एक और मामले में बेहतर रहा है। मनमोहन सरकार ने 2009-2014 की अवधि में पीएसयू इकाइयों में अपने अल्पांश शेयरों की बिक्री से ही समूचा विनिवेश राजस्व जुटाया था लेकिन मोदी सरकार की विनिवेश प्राप्तियों में अल्पांश शेयर बिक्री का हिस्सा 2 लाख करोड़ रुपये के साथ 71 फीसदी ही है।

मोदी सरकार ने विनिवेश प्राप्तियां बढ़ाने के लिए पीएसयू में अपनी हिस्सेदारी बेचने के दौरान कई तरह के प्रयोग किए। विनिवेश के इन नए तरीकों में पीएसयू के कर्मचारियों को उसके शेयर बेचना, शेयरों की पुनर्खरीद, प्रारंभिक सार्वजनिक निर्गम लाना और एक्सचेंज पर पीएसयू के फंड की बिक्री करना शामिल हैं। ऐसे लेनदेन से होने वाली प्राप्तियां 15,243 करोड़ रुपये रहने का अनुमान है जो कुल विनिवेश राजस्व का महज पांच फीसदी ही है।

मोदी सरकार को बाकी 24 फीसदी विनिवेश प्राप्ति कहां से हुई? करीब 69,161 करोड़ रुपये आकार वाली यह राशि 'रणनीतिक बिक्री' के जरिये जुटाई गई थी। मोदी सरकार के शुरुआती वर्षों में बजट के विनिवेश प्राप्ति खंड में रणनीतिक बिक्री का उल्लेख किए जाने का आशय निजीकरण से लगाया गया था। लेकिन आईडीबीआई बैंक या एयर इंडिया के निजीकरण की सरकार की कोशिशें नाकाम हो गईं। मोदी सरकार ने अपने कार्यकाल में निजीकरण की केवल यही दो कोशिशें की थीं। एयर इंडिया की बिक्री स्थगित कर दी गई है जबकि आईडीबीआई बैंक को सरकारी नियंत्रण वाली बीमा कंपनी एलआईसी के जरिये मुश्किल से निकाला जा चुका है। फिर रणनीतिक बिक्री से आने वाले 69,161 करोड़ रुपये कहां से आए?

इस राजस्व के स्रोत पर फौरी नजर डालने से पता चलेगा कि मोदी सरकार ने रणनीतिक बिक्री के मायने को ही चतुराई दिखाते हुए पुनर्परिभाषित कर दिया है और दूसरे उपक्रमों के संसाधनों का इस्तेमाल अपना विनिवेश राजस्व बढ़ाने के लिए किया है। पहले सरकार के पास ऐक्सिस बैंक, आईटीसी और लार्सन ऐंड टुब्रो जैसी कंपनियों के काफी शेयर थे जिनका स्वामित्व अब बंद हो चुकी भारतीय यूनिट ट्रस्ट (यूटीआई) के पास था। ये शेयर सरकारी स्वामित्व वाली इकाई एसयू-यूटीआई को दिए गए थे। इन शेयरों की बिक्री से हुई आय ने सरकार के रणनीतिक बिक्री राजस्व में काफी योगदान दिया है। वर्ष 2016-17 में ऐसी प्राप्तियां 10,779 करोड़ और 2017-18 में 5,553 करोड़ रुपये रहीं। सरकार ने गत दो वर्षों में किए गए चार और लेनदेन को भी रणनीतिक बिक्री से राजस्व घोषित कर दिया। वर्ष 2017-18 में सरकार ने यह फैसला किया कि तेल उपक्रम ओएनजीसी को तेल बिक्री उपक्रम एचपीसीएल का अधिग्रहण करना चाहिए। ओएनजीसी ने एचपीसीएल में सरकार की समूची बहुलांश हिस्सेदारी को ले लिया जिससे सरकार को 36,915 करोड़ रुपये मिले। आलोचकों ने इस अधिग्रहण के औचित्य पर सवाल उठाए थे। ओएनजीसी को इस अधिग्रहण के लिए रकम जुटाने के वास्ते कई बैंकों से उधार लेना पड़ा था। यह ऑफ-मार्केट सौदा भी था। ओएनजीसी और एचपीसीएल दोनों ही उपक्रमों के अल्पांश शेयरधारकों को पूरी तरह नजरअंदाज किया गया। इस सौदे को लेकर दोनों कंपनियों के शीर्ष प्रबंधन में भी नाराजगी के सुर उठे थे लेकिन सरकार इस सौदे से बड़ा विनिवेश राजस्व जुटाने में सफल रही और फिर उसे रणनीतिक बिक्री के मद में दिखा दिया।

पिछले साल भी सरकार ने ऐसे तीन सौदों से 15,914 करोड़ रुपये जुटाए। इसमें से 14,500 करोड़ रुपये रूरल इलेक्ट्रिफिकेशन कॉर्पोरेशन (आरईसी) में पावर फाइनैंस कॉर्पोरेशन (पीएफसी) की हिस्सेदारी खरीद से आए थे। पीएफसी ने इस खरीद के लिए वित्त का इंतजाम अपने स्रोतों और कर्ज से किया था।

निर्माण उपक्रम एनबीसीसी ने स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय की अंडरटेकिंग एचएससीसी की सौ फीसदी हिस्सेदारी 285 करोड़ रुपये में खरीदी। इसी तरह ड्रेजिंग कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया में सरकार ने अपनी पूरी हिस्सेदारी चार बंदरगाहों के कंसोर्टियम को 1,049 करोड़ रुपये में बेच दी।

इनमें से किसी भी रणनीतिक बिक्री से उस कंपनी का सार्वजनिक उपक्रम वाली प्रकृति बदली नहीं है और न ही उनका स्वामित्व ही निजी हाथों में गया है। सरकार ने अपनी हिस्सेदारी को एक के बजाय दूसरे उपक्रम को बेचा भर है। वे दूसरे उपक्रमों की तरह काम करते रहेंगे।

ऐसे में कई सवाल खड़े होते हैं। इन सौदों को रणनीतिक बिक्री क्यों कहा जाए? सरकार की अपनी हिस्सेदारी किसी और उपक्रम को बेचने के पीछे क्या रणनीति हो सकती है? इनमें से अधिकांश खरीद के दौरान पीएसयू को नए कर्ज लेने पड़े हैं। क्या सरकार का अपना विनिवेश लक्ष्य हासिल करने के लिए उपक्रमों पर बोझ डालना कोई समझदार रणनीति है? क्या इन उपक्रमों के शेयरों की खुले बाजार में बिक्री बेहतर तरीका नहीं होता? उम्मीद है कि नई सरकार इन सवालों पर गौर करेगी और उनके संतोषजनक जवाब तलाशेगी।

कानाफूसी

आरोप-प्रत्यारोप

यह बात तो लगभग सभी जानते हैं कि छत्तीसगढ़ के वर्तमान मुख्यमंत्री कांग्रेस नेता भूपेश बघेल और भारतीय जनता पार्टी के पूर्व मुख्यमंत्री डॉ. रमन सिंह एक दूसरे को कतई पसंद नहीं करते हैं। इतना ही नहीं दोनों नेता सोशल मीडिया के माध्यम से अक्सर एक दूसरे पर निशाना साधते हुए भी देखे जा सकते हैं। बहरहाल इन दिनों चुनावी माहौल में हालात कुछ ज्यादा ही खराब होते जा रहे हैं। पिछले दिनों रमन सिंह ने ट्विटर के माध्यम से बघेल पर हमला बोला और ट्वीट किया कि देश के 29 राज्यों में शायद भूपेश बघेल इकलौते ऐसे मुख्यमंत्री हैं जो जमानत पर चल रहे हैं। जाहिर है बघेल ने जवाब दिया। उन्होंने सिंह के दामाद तक को लपेटे में लेते हुए दावा किया कि रमन सिंह के दामाद, पत्नी, बेटा और यहां तक कि उनका रसोइया भी भ्रष्टाचार के आरोपों से घिरा हुआ है। बघेल ने लिखा कि ऐसे व्यक्ति को दूसरो को उपदेश नहीं देना चाहिए। गौरतलब है कि सितंबर 2018 में बघेल जब प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष थे तब उनको एक मंत्री की आपत्तिजनक सीडी के मामले में जेल भेजा गया था। उधर बीते मार्च महीने में रमन सिंह के दामाद के खिलाफ एक सरकारी अस्पताल में कथित वित्तीय अनियमितताओं का मामला दर्ज किया गया।

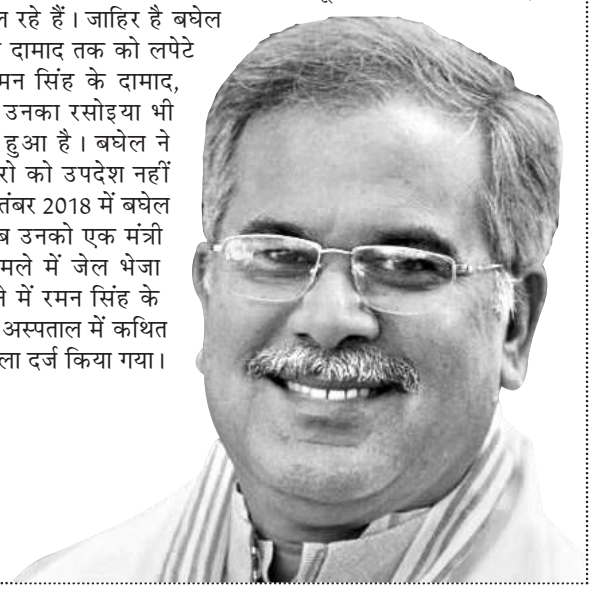

आपका पक्ष

अमेरिका-ईरान पर भारत की रणनीति

अमेरिका के राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने कड़ा रुख अपनाते हुए किसी भी देश को ईरान से तेल आयात करने की मोहलत नहीं देने की बात कही है। पिछले वर्ष परमाणु समझौते के उल्लंघन के बाद अमेरिका ने ईरान पर कड़े प्रतिबंध लगाए थे। हालांकि उस समय कुछ देशों को तेल आयात पर 180 दिन की रियायत दी गई थी जिससे वह धीरे-धीरे ईरान से तेल आयात कम कर सके। पिछले कुछ समय से ऐसा माना जा रहा है कि अमेरिका आगे भी भारत जैसे देशों को रियायत जारी रख सकता है। लेकिन ट्रंप के इस बयान से अब यह उम्मीद धूमिल होती नजर आ रही है। विदित है कि ईरान तीसरा बड़ा देश है जिससे भारत तेल आयात करता है। इसलिए अगर भारत को तेल आयात में रियायत नहीं मिलती है तो इन प्रतिबंधों का भारत पर व्यापक असर हो सकता है। ऐसे में भारत के पास दो विकल्प होंगे जिसमें या तो तेल खरीदना जारी रखा जा सकता है या फिर इस

अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने ईरान से कच्चे तेल आयात पर प्रतिबंध लगाया है

पर रोक लगाई जा सकती है। लेकिन दोनों विकल्पों में भारत के लिए एक तरफ कुआं तो दूसरी तरफ खाई जैसी स्थिति होगी। अगर भारत आयात जारी रखता है तो अमेरिका से संबंधों में खटास आ सकती है। इससे अमेरिका को किया जाने वाला निर्यात प्रभावित होगा और आतंकवाद के मुकाबले में अमेरिका से मिल रहे सहयोग में भी कमी आएगी। अमेरिका ने स्वयं ही आगे आकर मसूद अजहर पर प्रतिबंधों की वकालत की थी। अगर भारत आयात नहीं करता है तो ईरान के साथ संबंध खराब होंगे और भारत के चाबहार बंदरगाह के विकास में बाधा आएगी। इसे चीन की ओबोर परियोजना का जवाब माना जाता है। इसके अलावा भारत की मध्य एशिया तक पहुंच के प्रयासों पर भी विराम चिह्न लगने की संभावना है। कुल मिलाकर मौजूदा समय भारत के लिए धर्म संकट से कम नहीं है। ऐसे में दोनों पक्षों पर गहन अध्ययन कर बीच का बेहतर रास्ता निकालना होगा।

सुमित यादव, जालौन

शिक्षा का अधिकार स्कूलों में दाखिला

ऐसी खबरें आई हैं कि आधार कार्ड नहीं होने की वजह से दिल्ली के स्कूलों में बच्चों का दाखिला नहीं हो रहा है। पिछले साल भी यही समस्या आई थी जिसके बाद सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया था कि बच्चों को दाखिले से मना नहीं किया जा सकता है। लेकिन आज भी दिल्ली में हजारों बच्चों का आधार कार्ड नहीं होने से स्कूलों में दाखिला नहीं हो रहा है। इस संबंध में शिक्षा और स्वास्थ्य अधिकार के लिए काम करने वाले एक सामाजिक कार्यकर्ता और वकील ने दिल्ली उच्च न्यायालय में याचिका दायर की थी। अदालत ने एक सप्ताह में जवाब दाखिल करने के आदेश दिए हैं। इस दौरान अदालत ने दिल्ली सरकार को एक सप्ताह में दाखिला देने या नहीं देने के लिए कारण बताने को कहा है। दिल्ली में 70 प्रतिशत से अधिक लोग बाहर से आकर नौकरी करते हैं। उनमें से कई लोग ऐसे हैं जो दिल्ली में वर्षों से रह रहे हैं लेकिन उनका दिल्ली में कोई स्थायी पता नहीं है। ऐसे में उनके लिए दस्तावेज बना पाना संभव नहीं है। चाहे कितने दावे किए जाएं लेकिन आज भी स्कूलों में बच्चों का आधार कार्ड, बैंक खाते और दिल्ली के आवासीय प्रमाण पत्र नहीं होने के कारण दाखिला नहीं लिया जा रहा है।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।